हुआ है। नगरीय परिस्थिति में निम्न जाति द्वारा खान-पान, रहन-सहन, विश्वास, कर्मकाण्ड एवं जीवन शैली को अपनाने पर उन्हें अब विरोध का सामना नहीं करना पड़ता। इसके फलस्वरूप संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हुई।

(6) धार्मिक तीर्थस्थलों ने भी संस्कृतीकरण को बढ़ावा दिया है। धार्मिक स्थलों पर सांस्कृतिक विचारों एवं विश्वासों के प्रसार ने संस्कृतीकरण की प्रक्रिया को उपयुक्त अवसर प्रदान किया है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया व सामाजिक परिवर्तन
(The Process of Sanskritization and Social Change)

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि आधुनिक भारत में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के द्वारा निम्न जातियों, जनजातियों या अन्य समूहों की सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज, आदर्श, मूल्य, कर्मकाण्ड, विचार आदि में उल्लेखनीय परिवर्तन हो रहा है। निम्नलिखित विवेचना से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी–

(1) संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से कोई भी जाति, जनजाति या समूह अपने से उच्च जाति (विशेषतः द्विज जाति) के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और मूल्य को अपनाने का प्रयत्न करता है। फलस्वरूप निम्न जाति, जनजाति या समूह के रीति-रिवाज आदि में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हो जाते हैं।

(2) संस्कृतीकरण के द्वारा निम्न स्तर की जाति, जनजाति या समूह सामाजिक सोपान में या उतार-चढ़ाव के क्रम में अपनी वर्तमान स्थिति से उच्च स्थिति (higher status) प्राप्त करने का प्रयास करता है। फलतः जातीय या सामाजिक संस्तरण (stratification) और संरचना (structure) में भी उसी के अनुरूप परिवर्तन हो जाता है।

(3) हम यह जानते हैं कि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया निम्न जाति या समूह द्वारा उच्च जाति का अनुकरण करने से चलती है। इसका परिणाम यह होता है कि उच्च जाति की विशिष्टता और प्रभुत्व धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता है। सामान्य रूप से संस्कृतीकरण एक जाति को जातीय संस्तरण में ऊँचा पद प्राप्त करने योग्य बनाता है और उस योग्यता के प्राप्त होने का अर्थ यही होता है कि उच्च जाति की अपनी विशिष्टताएं अपने पृथक् अस्तित्व को बनाए रखने में असफल रहती हैं।

(4) संस्कृतीकरण की प्रक्रिया केवल जाति में ही नहीं अपितु जनजाति अथवा अन्य समूहों में भी देखी जा सकती है। इससे यह बात स्पष्ट है कि संस्कृतीकरण केवल जातीय संरचना व संस्तरण में ही नहीं अपितु सामाजिक संरचना व संस्तरण (social structure and stratification) में भी परिवर्तन लाती है। यह परिवर्तन जीवन के ढंग (way of life) से लेकर सामाजिक स्थिति तक हो सकता है।

(5) संस्कृतीकरण के द्वारा सामाजिक संरचना में ऊँचे पद या स्थिति का दावा किया जाता है जिसके फलस्वरूप निम्न जाति, जनजाति या सामाजिक समूहों की नीचे से ऊपर की ओर गतिशीलता बढ़ जाती है। इस गतिशीलता का प्रभाव सामाजिक परिवर्तन पर भी अवश्य ही पड़ता है।

Scanned with CamScanner

इसी से स्पष्ट है कि संस्कृतीकरण से सामाजिक परिवर्तन कैसे होता है। वास्तव में संस्कृतीकरण के अन्तर्गत मुख्यतः ब्राह्मण जाति को और सामान्य रूप में द्विज जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रीय व वैश्य) को निम्न जातियों, जनजातियों तथा अन्य सामाजिक समूहों के सदस्य 'आदर्श' के रूप में मानते हैं और इसीलिए उनके साथ हर विषय में समरूपता (identity) स्थापित करने में गौरव का अनुभव करते हैं। डॉ. श्रीनिवास ने स्वीकार किया है कि ब्राह्मण आदर्श के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आदर्श भी संस्कृतीकरण के आदर्श हो सकते हैं।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के आदर्श
(Ideals of The Process of Sanskritization)

डॉ. श्रीनिवास के अनुसार सामान्य रूप से संस्कृतीकरण एक जाति को जातीय संस्तरण में ऊँचा पद प्राप्त करने योग्य बनाता है। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत केवल उच्च जाति के रीति-रिवाजों और आदतों को ही नहीं बल्कि उनके विचारों, मूल्यों तथा आदर्शों को भी ग्रहण करना आता है। वंश-समूह के क्षेत्र में संस्कृतीकरण वंश के महत्त्व पर जोर देता है और इसीलिए उच्च वंश के साथ समरूपता स्थापित करना भी संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में आता है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में एक जाति-विशेष को 'आदर्श' मान लिया जाता है और जो निम्न जाति या जनजाति उसे आदर्श मानती है वह अपनी उस आदर्श जाति के ही रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा व जीवन-पद्धति को अपनाने का प्रयत्न करती है। बहुधा यह आदर्श जाति द्विज जातियां अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ही होती है जिनका कि यज्ञोपवीत संस्कार होता है। इनमें ब्राह्मण आदर्श सबसे श्रेष्ठ होता है क्योंकि द्विजों में ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु आधुनिक भारतीय समाज में ब्राह्मण आदर्श के अतिरिक्त क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदर्श भी संस्कृतीकरण के 'आदर्श' हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक हरिजन ब्राह्मण बनने का सपना न देखकर शूद्र आदर्श को ही अपना लक्ष्य मान सकता है।

भारतीय ग्रामीण समुदायों में संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में प्रभु जाति की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। भूमि पर स्वामित्व से केवल आर्थिक शक्ति ही नहीं अपितु सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ती है और इसीलिए वह प्रभु जाति के रूप में उभरता है और संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में आदर्श जाति के रूप में मान लिया जाता है, चाहे जातीय सोपान में उसकी स्थिति नीची ही क्यों न हो। उदाहरणार्थ, पंजाब के कुछ भागों में जाट भूस्वामी ब्राह्मणों को अपना सेवक समझते हैं और पूर्वी उत्तर प्रदेश में माधेपुर गांव में किसी समय प्रभुतासम्पन्न ठाकुर अपने गुरुओं और पुरोहितों के अतिरिक्त अन्य किसी ब्राह्मण के हाथ का बना भोजन नहीं खाते थे। कुछ भी हो, प्रभु जाति की अपनी एक स्थानीय प्रतिष्ठा होती है और अन्य जाति के लोग उस प्रभु जाति के व्यवहार, जीवन के ढंग आदि का अनुकरण करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार यदि स्थानीय प्रभु जाति ब्राह्मण है तो वहां संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति ब्राह्मण आदर्श की ओर होगी और यदि वह प्रभु जाति राजपूत

Scanned with CamScanner

या बनिया हो तो क्षत्रिय या वैश्य आदर्श की ओर। प्रत्येक स्थानीय प्रभु जाति की ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य आदर्शों की अपनी-अपनी अलग धारणा होती है।

संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में ब्राह्मण आदर्श को प्रायः सभी लोग सर्वश्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि इसके साथ धार्मिक तथा शुद्धतावादी आदर्श की धारणा जुड़ी हुई है। यही कारण है कि क्षत्रिय तथा अन्य मदिरासेवी और मांसाहारी समूह भी इस आदर्श की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। अधिकतर क्षेत्रों में मांसाहार व मदिरा सेवन निम्न जातियों के चिन्ह माने जाते हैं। ब्राह्मण पुरोहित शाकाहारी होते हैं। इस प्रकार शाकाहारी और मदिरात्याग के शुद्धतावादी आदर्श को जाति-व्यवस्था में सदैव ही अन्य आदर्शों से ऊँचा माना जाता रहा है। संस्कृतीकरण इन्हीं ऊँचे आदर्शों की ओर क्रियाशील होता है।

डॉ. श्रीनिवास के अनुसार संस्कृतीकरण के लिए किसी विशेष आर्थिक स्तर की आवश्यकता नहीं है और न उसका किसी समूह की आर्थिक स्थिति पर कोई अनिवार्य प्रभाव पड़ता है। यद्यपि यह सच है कि आर्थिक स्तर ऊँचा होने से संस्कृतीकरण में सहायता अवश्य ही मिलती है। इसके अलावा राजनीतिक सत्ता प्राप्त होने से, शिक्षा का स्तर बढ़ने से और नेतृत्व का अवसर मिलने से संस्कृतीकरण में सहायता मिलती है।

संस्कृतीकरण की अवधारणा में दोष
(Short-coming in the Concept of Sanskritization)

स्वयं **डॉ. श्रीनिवास** ने स्वीकार किया है कि संस्कृतीकरण एक उपयोगी अवधारण होते हुए भी बहुत स्पष्ट अवधारणा नहीं है। उन्हीं के शब्दों में, "संस्कृतीकरण निःसन्देह एक बेतुका (awkward) शब्द है, फिर भी कई कारणों से वह ब्राह्मणीकरण (Brahmanization) से बेहतर पाया गया।" इस अवधारणा की जटिलता व ढीलेपन के कारण ही भारतीय समाज के विश्लेषण में इसकी उपयोगिता बहुत ही सीमित है।

संस्कृतीकरण के अन्तर्गत नीची जातियां ऊँची जातियों को संस्कृतियों का क्रमशः ग्रहण करती है यद्यपि जाति-प्रथा में इसका निषेध है। **डॉ. श्रीनिवास** के शब्दों में, 'संक्षेप में, नीची जाति ने जहां तक सम्भव हो सका ब्राह्मणों की प्रथाओं, संस्कारों और विश्वासों को ग्रहण कर लिया, और इस भांति एक नीची जाति द्वारा ब्राह्मणों के जीवन के तरीकों को अपना लेना बहुधा दिखाई देने वाली एक प्रक्रिया होते हुए भी सैद्धान्तिक तौर पर निषिद्ध है।" पर इस प्रकार निम्न जाति द्वारा उच्च जाति या ब्राह्मण संस्कृति को अपनाने की प्रक्रिया किसी विशेष समुदाय या देश के किसी विशेष भाग में भले ही सच हो किन्तु सम्पूर्ण देश पर लागू नहीं की जा सकती। यदि कोई दलित ब्राह्मण के समान आचार-व्यवहार करने लगे तो क्या वह ब्राह्मण बन जाएगा या उसे ब्राह्मण जैसी स्थिति मिल जाएगी?

इसीलिए **डॉ. मजूमदार** का प्रश्न है, "यदि संस्कृतीकरण एक प्रक्रिया है तो वह कहां रुकती है?" आपने यह दर्शाया है कि सामाजिक संस्तरण में जातियों की प्रगति ऊर्ध्वोन्मुख (vertical) या ऊपर की ओर न होकर क्षैतिज (horizontal) अर्थात् एक ही

Scanned with CamScanner

जाति की विभिन्न उप-जातियों में होती है। यह एक सत्य है प्रत्येक जाति में अनेक उप-जातियां होती हैं जिनका कि जातीय संस्तरण में एक ही स्थान होते हुए भी जो परस्पर एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा मानती है। उदाहरणार्थ, सभी ब्राह्मणों का स्थान जातीय संस्तरण एक-सा होते हुए भी इनमें गौड़, कान्यकुब्ज, सारस्वत आदि भिन्न-भिन्न उप-जातियां हैं जो एक-दूसरे को ऊँचा-नीचा मानती है अर्थात् इनमें ऊँच-नीच का एक संस्तरण है। जो नीची स्थिति पर है वह यह प्रयत्न करता है कि वह ऊँची स्थिति पर पहुंच जाए। केवल ब्राह्मणों में ही नहीं, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यहां तक कि अस्पृश्य जातियों में भी इसी प्रकार की उप-जातियां होती हैं और उनमें ऊँच-नीच का संस्तरण देखने को मिलता है और इनमें सामान्य प्रवृत्ति यह है कि अपनी ही मूल जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि) में जो ऊँच-नीच का संस्तरण या सोपान है उसमें नीची स्थिति में ऊँची स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास किया जाए। इस प्रकार परिवर्तन या प्रगति जातीय संस्तरण के अन्तर्गत ऊर्ध्वोन्मुखी न होकर क्षैतिज होती है। **डॉ. श्रीनिवास** द्वारा प्रस्तुत संस्कृतीकरण की संकल्पना इस सत्य को प्रकट नहीं करती है।

संस्कृतीकरण की अवधारणा का एक और उल्लेखनीय दोष यह है कि यह अवधारणा इस सत्य को भी छिपा जाती है कि संस्कृतीकरण की एक विपरीत प्रक्रिया भी भारतीय समाज में क्रियाशील है। **डॉ. मजूमदार** ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि भारत के सभी भागों में संस्कृतीकरण से कहीं अधिक असंस्कृतीकरण (Desanskritization) दिखलाई पड़ती है जिसके अन्तर्गत स्वयं ऊँची जातियां ही अपने विशिष्ट आचार-विचार, रीति-रिवाज, वेशभूषा को आज छोड़ती जा रही है। इस प्रकार **डॉ. मजूमदार** का निष्कर्ष यही है कि भारतीय समाज में संस्कृतीकरण की अपेक्षा असंस्कृतीकरण की प्रक्रिया अधिक स्पष्ट है।

परीक्षोपयोगी प्रश्न

Scanned with CamScanner